DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal (2016), 7, 50-56

ब्रज संस्कृति में पर्यावरण चेतना

सुजाता चतुर्वेदी

सारांश

ब्रज में बसे प्राकृतिक सौंदर्य और सांस्कृतिक सौहार्द के मूल में कल्याणमय पर्यावरण पोषण एवं संरक्षण का भाव निहित है। इस शोध पत्र द्वारा सूर–साहित्य में निदेर्शित कृष्ण–लीलाओं और ब्रज संस्कृति में व्याप्त पर्यावरण संरक्षण के विविध आयामों को खोजने की चेष्टा की गयी है। यह संरक्षण का भाव कहीं पशु–पालन की प्रवृत्ति में मिलता है, तो कहीं ग्राम्य संस्कृति में वनों और वृक्षों के अपूर्व महत्व में झलकता है। जैव–विविधता, वन–संरक्षण, वृक्षारोपण, जल–संरक्षण, पर्यावरण नैतिकता आदि आयामों का बहुत स्पष्ट द्योतन ब्रज संस्कृति में प्राप्त होता है। ब्रज संस्कृति द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु अपने परिवेश से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने का मर्म खोजकर इस शोध पत्र द्वारा प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। विश्व भर में पर्यावरण को लेकर विविध मंचों पर वैचारिक मंथन हो रहे हैं। किन्तु आज आवश्यकता है आत्म मंथन की– जिसके द्वारा अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति से प्रेरित होकर मनुष्य को सहज–सरल जीवन शैली अपनाकर सम्पूर्ण पर्यावरण के अभिन्न अंग के रूप में पर्यावरण पोषण में सहायक भूमिका निभानी होगी। इस शोध पत्र द्वारा साहित्य के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के इस आयाम पर प्रकाश डाला जा रहा है।

कूट शब्द : ब्रज संस्कृति, पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण चेतना, सूरदास एवं श्रीकृष्ण।

सुन्दर स्याम सखा सब सुंदर, सुंदर वेष धरे गोपाल।
सुन्दर पथ, सुंदर–गति आवन, सुंदर मुरली–सब्द रसाल।
सुन्दर लोग, सकल ब्रज सुंदर, सुंदर हलधर सुंदर चाल।
सुंदर बचन, बिलोकनि सुंदर, सुंदर गुन सुंदर बनमाल।
सुंदर गोप, गाइ अति सुंदर, सुंदरि गुन सब करतिं बिचार।
सूरदास स्याम संग सब सुख सुंदर, सुंदर भक्त हेतु अवतार।।[1]
(सूरदास, सं. 2005 वि., पृ0 422)

ब्रज–संस्कृति या सूरदास–संस्कृति को यदि एक शब्द दिया जाये, तो वह 'सुंदर' होगा। यह सुंदरता मात्र बाह्य नहीं, आंतरिक भी है, अनुभूति के विविध स्तरों का आरोहण करती हुई मानसिक व आत्मिक स्तर तक व्याप्त होने वाली भावना है। ब्रज में बसे प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सांस्कृतिक और सामाजिक सौहार्द को जब सूरदास की लेखनी का भावात्मक संबल और गहन अनुभूति का धरातल मिलता है तो समस्त पर्यावरण स्वस्तिमय, कल्याणमय, कृष्णमय हो उठता है। इस सुन्दरता की सहजता ही इसे इतना ग्राह्य बना देती है। नित्य प्रति के जीवन के क्रिया–कलापों में रसात्मकता, सुन्दरता, सहजता, निश्छलता घोलकर ब्रज संस्कृति ने समस्त संसार के समक्ष पर्यावरण संरक्षण का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। कृष्ण के जीवन से संबद्ध विविध लीलाओं, उनके विचारों, उनकी अठखेलियों में छिपे अनेक रहस्यों को आज यदि पर्यावरण के संरक्षण और पोषण के आलोक में परखा जाए, तो यह तथ्य साफ उभर कर आता है कि कृष्णमय ब्रज और ब्रजमय कृष्ण की स्थापना कर सूरदास ने केवल भक्ति और प्रेम की रस–गंगा ही प्रवाहित नहीं की, बल्कि सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर उन्होंने समस्त *प्रकृति और पर्यावरण से एकात्म भाव* के गहन संदेश को मूर्तिमान रूप दिया। समस्त ब्रजमण्डल में व्याप्त एक अद्भुत शांति, सुखमय अनुभूति, सौहार्दमय वातावरण और सहज जीवनचर्या के पीछे यही मूल कारण है कि ब्रज संस्कृति कृष्णमय है और कृष्ण ही पूर्णता हैं, जड़–चेतन का उत्सव हैं, पर्यावरण की धुरी हैं।

सूरदास के कृतित्व में बसे, छिपे इन संकेतों को आज पहचानने की, आत्मसात् करने की नितान्त आवश्यकता है। आज के संत्रस्त और विक्षुब्ध जीवन को पुनः लय में लाने के लिए ज़रूरी है कि उसका जुड़ाव हो प्रकृति से, संतुलन हो पर्यावरण से। सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, भावात्मक और प्राकृतिक संतुलन की गोद में ही विकास के बीज अंकुरित होंगे। इसी कारण इस शोध पत्र द्वारा ब्रज संस्कृति में व्याप्त कृष्ण–लीलाओं की विविधता में पर्यावरण–संरक्षण के विभिन्न आयामों को खोजने की चेष्टा की जा रही है, ताकि मनुष्य दुरूह आवरणबद्ध और छद्ममय जीवन में कुछ सहजता, कुछ सौहार्द, कुछ संरचना, कुछ संरक्षण की ताज़गी से बंद कपाटों को खोलने का प्रयास करें। और यह निस्संदेह सत्य है कि कृष्णमयी मोहक मुस्कान की एक रेखा मात्र से मनुष्य के जीवन में, उसके

आस–पास के वातावरण में अपनत्व और रागात्मकता की अद्‌भुत कड़ी जोड़ सकते हैं।

पर्यावरण

'पर्यावरण' का अर्थ है चारों ओर से आवृत्त किए हुए (परि + आवरण)। हमारे चारों ओर का वातावरण या परिवेश जो मनुष्य व अन्य जीवधारियों को प्रभावित करता है, वही पर्यावरण कहलाता है। ''पर्यावरण बड़ा व्यापक शब्द है। वस्तुतः पर्यावरण का तात्पर्य उस समूची भौतिक एवं जैविक अवस्था से है जिसमें जीवधारी रहते हैं, बढ़ते–पनपते हैं और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं।'' (प्रसाद, 1998, पृ0 24)। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत एवं जीव की क्रिया, रहन–सहन, प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक जगत ही पर्यावरण है, जिसमें जीव पलता–बढ़ता है तथा अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का विकास करता है। अतः अपने वातावरण या परिवेश के प्रति सजगता, जागरूकता और उसके प्रति तादात्म्य की भावना ही पर्यावरण चेतना के अन्तर्गत समाहित होती है।

''पर्यावरण के प्रति प्यार, अनुराग की प्रवृत्ति, श्रद्धा एवं कृतज्ञता की अभिव्यक्ति तथा विशेष परिस्थिति में इसके संरक्षण हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना ही इनके प्रति सच्ची संवेदना है। एक ही पर्यावरण क्षेत्र में रहने वाले सभी प्राणी जब पर्यावरण घटकों को अपना समझकर उनके भावी सुख से सुखी तथा उनके भावी दुखों से दुखी होने की अनुभूति करें, तो यह पर्यावरण चेतना की पहचान है'' (शुक्ल, 1998, पृ0 21)।

पर्यावरण चेतना

सूर–साहित्य में पर्यावरण चेतना का अत्यन्त विकसित और सतर्क स्वरूप प्राप्त होता है। पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, पर्वत–नदी–वन और सबसे अधिक गौओं के प्रति आत्मीयता व सहानुभूति की भावना से गोप–गोपियों की ब्रज–संस्कृति आप्लावित है। जब मनुष्य स्वयं प्रकृति और अपने आस–पास के वातावरण से तादात्म्य स्थापित कर उसकी ताल में ताल मिलाकर चलता है, तो उसकी उन्नति (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और आत्मिक) के मार्ग स्वयमेव खुलते चले जाते हैं। जब *''सर्वे भवन्तु सुखिनः''* (वृहदारण्यक उपनिषद– 1/4/14) अर्थात् सभी सुखी रहें, का भाव लेकर मानव जीवन–पथ पर अग्रसर होता है, तो द्वेष–क्लेश के अवांछित भावों का शनैः–शनैः स्वतः नाश होने लगता है। साथ ही व्यक्ति एक उच्च आत्मिक व आध्यात्मिक स्तर पर आरोहण करने लगता है। सूरदास के कृष्ण एक सामान्य बालक और साधारण गोप का जीवन ब्रज में रहकर अवश्य व्यतीत करते हैं, परन्तु अपने जीवन की छोटी–छोटी बातों से वे हर छोटे से छोटे प्राणी या पशु या वन या कुंज का महत्व उभारते हैं। पर्यावरण के संतुलित विकास में हर छोटे–बड़े प्राणी–अप्राणी की महत्वपूर्ण भूमिका ब्रज संस्कृति में उजागर होती है।

ब्रज संस्कृति में व्याप्त इस पर्यावरण चेतना और संरक्षण के विविध आयामों को सूर–साहित्य के माध्यम से लक्षित किया जा सकता है। जहाँ व्यक्ति और प्रकृति का एकात्म भाव होगा, वहाँ पर्यावरण से तादात्म्य भी उत्पन्न होता है। यही तादात्म्य का भाव संरक्षण और पोषण की दिशा दिखाता है। इस प्रकार सूर–साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए ब्रज–संस्कृति की कुछ झलकियों द्वारा पर्यावरण चेतना के कतिपय आयामों को यहाँ उद्‌घाटित करने की चेष्टा की जा रही है।

जैव विविधता

इनमें सर्वप्रथम है– जैव विविधता। जैव विविधता का अर्थ है वह समस्त प्राकृतिक सम्पदा व संसाधन जो सम्पूर्ण पारिस्थितिकी में संतुलन उत्पन्न करते हैं। इसके अन्तर्गत सभी जीवधारी, पेड़–पौधे, मनुष्य आ जाते हैं। आज के संदर्भ में मनुष्य अपनी प्रगति हेतु अपने जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु उन विविधता भरे जीवों और जीवांशों को नष्ट करने के लिए तैयार है, जिनकी संख्या अनंत है। इस जैव विविधता में असंतुलन आने के कारण सारा पर्यावरण प्रभावित हो रहा है। अतः समय की आवश्यकता है कि अथक प्रयासों द्वारा मनुष्य अपने पर्यावरण में व्याप्त समस्त जीवों का यथासंभव पोषण व संरक्षण करे। साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग हो और उन्हें संरक्षित भी किया जाए।

ब्रज संस्कृति के नित्य अंग के रूप में गो–चारण, गो–दोहन, यमुना नदी का सुखद संसर्ग, कुंज वनों का आत्मीय संस्पर्श प्रमुखतः उभर कर आते हैं–

कह्यो गोपाल चरत हैं गो–सुत हम सब बैठि कलेऊ कीजै।
सीतल छाँह बृच्छ की सुन्दर, निर्मल जल जमुना को पीजै।
(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 412)

इस सम्पूर्ण परिवेश में कृष्ण के चहुँ ओर वृंदावन के वृक्ष, वन, कुंज, नदी की लहरियाँ और गौओं की भीड़ तो छायी ही है, साथ ही गोप–गोपियाँ–ग्वाले, नंद, यशोदा व कृष्ण के असंख्य मित्र–सखा भी सुदृढ़ पृष्ठभूमि बनाते हैं। सूरदास ने कृष्ण के मानवोचित कार्यों को प्रकृति के परिवेश में इतने सुघड़ रूप से जड़ा है कि वे न केवल स्वाभाविकता से ओत–प्रोत हैं, बल्कि अनुकरणीय भी बन पड़े हैं। इन सभी

क्रिया–कलापों के माध्यम से सूरदास ने इस प्रकृति में बिखरी अपार जैव–सम्पदा के उचित उपयोग और संरक्षण की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। वन और चारागाह अपनी विपुल संपदा द्वारा ग्वालों के जीवन–यापन का साधन बनते हैं। ग्वालों की गायें उसी घास को चरकर स्वस्थ व सबल बनती हैं और ये वन और कुंज अपनी हरीतिमा से धरती की उर्वरता और नियमित वर्षा भी सुनिश्चित करते हैं और साथ ही वातावरण को सुंदर, शोभायमान और सुखद तो बनाते ही हैं। गो–पालन, गो–दोहन, गो–चारण आदि कृत्यों द्वारा सूरदास ने कृष्ण के माध्यम से पशु–प्रेम जागृत किया है और साथ ही मनुष्य और पशु के आपसी संबंधों के अन्योन्याश्रय पर भी बल दिया है। सूरदास के समस्त साहित्य में ब्रजभूमि पर होने वाले गो–पालन के कार्यों का वर्णन है, वहीं मनुष्य और पशु के आपसी प्रेम और आपसी निर्भरता को दर्शाता है। यदि मनुष्य पशु की देखरेख करता है तो पशु भी मनुष्य के जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन बनता है। इस प्रकार आज विश्व भर में जो आवाज पशु–प्रेम और पशु–संरक्षण के प्रति उठायी जा रही है, उसकी ध्वनि बहुत पहले सूरदास अपनी ''काजरी और धौरी'' गैयों के प्रति समर्पण द्वारा व्यक्त कर चुके हैं। यह पशु–पालन और उनके प्रति संरक्षण का भाव आज तक ब्रज–संस्कृति में जीवित है। आज आवश्यकता है इस भाव के प्रसारण की ताकि प्रकृति की अनमोल थाती के प्रति अपनत्व और सहानुभूति का भाव जागृत हो सके।

वन संरक्षण और वृक्षारोपण

इसी से जुड़ा पक्ष है वन संरक्षण और वृक्षारोपण का। भारतीय संस्कृति वस्तुतः ग्रामीण संस्कृति और वन संस्कृति रही है। वन धरती के रक्षक हैं। वृक्ष वर्षा से होने वाली भूमि की कटान की गति को रोकते हैं। इनकी जड़ें ज़मीन को बाँधकर मिट्टी को बहने से बचाती हैं। वनों द्वारा पर्यावरण शुद्ध रहता है। वृक्ष कार्बन डाइऑक्साइड को आत्मसात करके जीवन देने वाली शुद्ध ऑक्सीजन प्रदान करते हैं ये बाढ़ और सूखे से रक्षा करते हैं, भोजन देते हैं, अनेक ग्रामोद्योगों को संबल प्रदान करते हैं। सूरदास की पूरी ब्रज–संस्कृति इन्हीं वन–वीथियों में पली–बढ़ी–पनपी है। ये वन ही 'वृंदावन' के आधार हैं, गोप–जीवन के प्राण हैं।

आजु मैं गाई चरावन जेहौं।
बृंदावन के भाँति–भाँति फल अपने कर मैं खेहौं।[3]
(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 399)

तो दूसरी ओर युवा कृष्ण की अद्‌भुत रास लीला के मनोरम स्थल भी यही वन हैं–

आजु बन बेनु बजावत स्याम।
यह कहि–कहि चक्रित भईं गोपा, सुनत मधुर सुर–ग्राम।।[4]
(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 604)

सूरदास ने समस्त ग्राम्य जीवन के फलने–फूलने के मध्य वनों और वृक्षों की अहं भूमिका प्रदर्शित की है। वृंदावनवासियों की भोर वन–कुंजों में पक्षियों की चहचहाहट से होती है, तो संध्या गोधूलि समय वन से लौटती गायों के गले की घंटियों की रुनझुन से होती है। यही वन उन ग्वालों के जीवन को सुख व समृद्धि प्रदान करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से यदि संकेत समझा जाए तो सूरदास ने इस ब्रज संस्कृति के माध्यम से पूरे समाज को वन–सम्पदा को संरक्षित और पोषित करने की दिशा दिखायी है। आज मनुष्य वृक्षारोपण का नारा बुलंद किए हैं, तो हजारों वर्ष पूर्व की भारतीय संस्कृति उस वृक्ष–संरक्षण द्वारा ही समृद्ध थी, सुखी थी।

जल संरक्षण

इस संदर्भ में जल की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। जल जीवन का आधार है। चाहे वह वर्षा के रूप में हो या नदियों, झीलों के रूप में, जल हमारे लिए मूल्यवान संसाधन है। भारत में वर्षा जल का प्राकृतिक संसाधन है। सूरदास की ब्रज–संस्कृति का फैलाव नदी के बहाव के साथ–साथ चलता है। यमुना के बिना कृष्ण का, गोप–गोपियों का, बाँस के वनों का प्रसंग ही अधूरा हो जाता है। यह जल ही जीवन की धारा को अबाध गति से प्रवाहित किए है। ''जमुना–जल'' के बिना शायद कृष्ण का व्यक्तित्व भी उतना रसमय न हो पाता। साथ ही यहाँ भारतीय संस्कृति और सभ्यता की भीनी खुशबू भी मिलती है। सभ्यता के स्थापन–काल से मनुष्य ने नदी का किनारा ढूँढ़ा, खेती के साधन खोजे और पशु–पालन किया– तब धीरे–धीरे वह सामाजिक और सांस्कृतिक हुआ। ब्रज संस्कृति में उसी आरम्भिक मानव प्रवृत्ति की प्रतिच्छाया विद्यमान है जो नदी के किनारे अपने छोटे से गाँव में ही विश्व भर का सुख जुटा सकने की क्षमता रखती है।

ब्रज संस्कृति के संदर्भ में जब यमुना की चर्चा होती है, तो एक ओर तो इसका सांस्कृतिक महत्व है, साथ ही प्रकृति विषयक महत्व है, दूसरी ओर पर्यावरण पोषण के रूप में महत्व है। समस्त चर–अचर जीवन जल पर आश्रित है और वह जल सूरदास की संस्कृति में यमुना का नीलवर्णी,

कृष्णवर्णी जल है। इसका किनारा खेलकूद, रास–रंग, त्यौहार–मेले आदि से लेकर व्रत–पूजन, खेती–बाड़ी तक का आश्रय–स्थल है। ऐसी यमुना में कालिया नाग के प्रसंग की सृष्टि करके सूरदास ने पर्यावरण के प्रदूषण के विषय को अत्यन्त जागरूकता से सांस्कृतिक पुट देकर उभारा है। यदि आज के संदर्भ से जोड़कर समझें, तो कालियानाग के समान समस्त अवांछनीय विषाक्त द्रव्य हैं, जो यमुना के जल को प्रदूषित और गंदला किए हैं। इनसे बचने का मार्ग भी कृष्ण ही सुझा गए थे– वह है कालिया–दमन।

फन–फन–प्रति निरतत नंदनंदन।[5]

(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 453)

जिस प्रकार नंद के 'नंदन' (पुत्र) कृष्ण ने कालिया नाग का फन कुचलकर उसके द्वारा विषमय होकर काली हुई यमुना को उस विष से मुक्त किया था, उसी प्रकार आज हमें संकेत लेते हुए अपनी प्राणवाहिनी जलधाराओं को प्रदूषण के विष से स्वच्छ करना अत्यावश्यक हो गया है। कालिया के फन पर नर्तन करते श्रीकृष्ण का उजला स्वरूप इस प्रदूषण की कालिमा को मिटाने के लिए संकल्प के रूप में लिया जा सकता है। आवश्यकता आज इसी संकल्प और दृष्टि–विस्तार की है– तभी पर्यावरण–संरक्षण का भाव सिद्ध हो सकेगा।

गिरिधर, ब्रजधर, मुरलीधर, धरनीधर, माधौ पीतांबरधर।
संख–चक्र–धर, गदा–पद्म–धर, सीस–मुकुटधर, अधर–सुधा–धर।
कंबु–कंठ–धर, कौस्तुभ–मनि–धर, बनमाला–धर, मुक्त–माल–धर।
सूरदास प्रभु गोप–वेष–धर, काली–फन पर चरन–कमल–धर।

(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 455)

प्रभु श्रीकृष्ण ने समस्त पर्यावरण और ब्रज की सुरक्षा हेतु गोप के वेश में अवतार लिया और गोवर्धन पर्वत को धारण (गिरिधर') करने से लेकर कालिया नाग के फन पर अपने चरण–कमल 'धर' कर उसे वश में किया। यही नहीं, श्रीविष्णु के अवतार के रूप में श्रीकृष्ण ने मुरली, पीतांबर, शंख, चक्र, कौस्तुभ–मणि और धरणी (धरती) को धारण ('धर') किया। अपनी विविध लीलाओं द्वारा भगवान कृष्ण ने धरती को सुरक्षित व सुखमय बनाने का संदेश दिया है।

गोवर्धन पूजन– पर्वतों का महत्व

कृष्ण लीलाओं पर चर्चा करते हुए गोवर्धन पर्वत का प्रसंग अछूता नहीं रह सकता। गोवर्धन ब्रजवासियों के लिए मात्र पर्वत ही नहीं, बल्कि अपने नामानुरूप वह उनके जीवन के संवर्धन का आधार था। कृष्ण ने इस पक्ष की ओर ब्रजवासियों का ध्यान आकृष्ट किया और उन्हें उस पर्वत की पूजा का विधान समझाया। सूरदास ने गोवर्धन–पूजन द्वारा केवल एक पर्वत की पूजा नहीं की, वरन् उस पूजन द्वारा पर्यावरण के उस महत्वपूर्ण संसाधन के संपोषण का तथ्य उभारा जो उस पूरे क्षेत्र को सुरक्षित, संरक्षित और पोषित किए रहता था–

मेरौ कह्यायौ सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई, तौ गोवर्धन मानौ।

(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 545)

श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों को गोवर्धन पर्वत का महत्व समझाते हुए उसे सम्पूर्ण पर्यावरण के पोषण के लिए अत्यावश्यक बताया। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया कि पूरे ब्रजमण्डल की कुशलता और सुरक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को पूजनीय ('मानौ') मानना आवश्यक है और उसे ब्रजवासी इष्ट के रूप में पूजना आरंभ करें।

धार्मिक आस्था से किसी कार्य–विधान को जोड़ देने पर समाज में वह कार्य नियमित रूप से सम्पन्न होने लगता है। इसी विचार से सूरदास ने गोवर्धन पर्वत को पूज्य मानने ('मानौ') का कार्य उसे ब्रजवासियों के इष्टदेव के रूप में प्रस्थापित करके सम्पन्न कराया। इससे यह निश्चित अवश्य हो गया कि ब्रजवासी अपने इष्ट, अपने पूजनीय का कोई अहित न होने देंगे और उसे सदैव संरक्षित रखेंगे। साथ ही इस प्राकृतिक संसाधन के प्रति उनके मन में कृतज्ञता का भाव भी उत्पन्न हुआ कि जिस पर्वत के वृक्षों के फलों, उसकी घास, उसकी मिट्टी से उनका जीवनयापन सदैव से होता रहा, उसके संरक्षण के प्रति उनका कर्तव्य भी है।

इंद्र–गर्व–दमन– अहं का विसर्जन

गोवर्धन पूजा के साथ ही जुड़ा है इंद्र के गर्व–दमन का संदर्भ। सूरदास ने अत्यन्त कुशलता से एक तीर से दो निशाने साधे हैं। एक ओर गोवर्धन पर्वत के प्रति ब्रजवासियों की आस्था जागृत और सुदृढ़ करके पर्यावरण के प्रति उन्हें सचेत किया है, तो दूसरी ओर इंद्र के अहं भाव पर चोट करते हुए उसे विकास में बाधक बताया है। अब तक ब्रज के इष्टदेव सुरपति इन्द्र थे, जिन्हें समस्त ब्रजवासी अत्यन्त श्रद्धा से पूजते थे। इससे इन्द्र का घमण्ड उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगा। उनके गर्व का दमन करने हेतु ही कृष्ण के माध्यम से इन्द्र को इष्ट की पदवी से अपदस्थ किया गया।

अपने इस अपमान को सहन न करने पर इन्द्र अपने घमण्ड में चूर होकर ब्रजवासियों को धमकाने और डराने पर उतर आते हैं। इन्द्र ने अपनी वारिद–सेना को ब्रज पर आक्रमण का आदेश दिया।

मेघ–दल–प्रबल ब्रज–लोग देखैं।
चकित जहँ–तहँ भए, निरखि बादर नए, ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखैं।
घटा घनघोर घहरात, अररात, दररात, थररात ब्रज लोग डरपे।।
(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 558)

इन्द्र के इस अहंपूर्ण कार्य का उत्तर कृष्ण ने गोवर्धन की असीम शक्ति और अदम्य क्षमता के माध्यम से दिया। भीषण वर्षा से डरे हुए ('डरपे') सम्पूर्ण ब्रजमण्डल को संरक्षित, सुरक्षित और निरापद स्थान प्राप्त होता है गोवर्धन के विस्तीर्ण आश्रय में और वह भी दिव्य आश्रय जिसे स्वयं कृष्ण ने अपने हाथ पर, अंगुली पर उठा रखा है–

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोवर्धन करत सहाई।
(सूरदास, सं0 2005 वि0, पृ0 562)

इस प्रसंग द्वारा सूरदास ने प्राकृतिक आपदा के समय मनुष्य की अदम्य जिजीविषा और सुदृढ़ इच्छा–शक्ति के महत्व की ओर भी संकेत किया है। ऐसी अद्‌भुत जीवनी शक्ति मनुष्य तभी प्राप्त कर सकता है जब वह विवेकी हो, विनीत हो, विनम्र हो, विश्वासमय हो। इन सभी गुणों को सूरदास ने कृष्ण के माध्यम से ब्रजमण्डल में प्रसारित करने की चेष्टा की।

पर्यावरण नैतिकता

इसी संदर्भ को जब पर्यावरण संरक्षण के दार्शनिक *पक्ष* से जोड़ा जाए, तो *गहन पारिस्थितिकी* (Deep Ecology) का पक्ष उभर आता है। पर्यावरण को दार्शनिक आधार प्राप्त होता है *''पर्यावरण नैतिकता''* की अवधारणा से। इस अवधारणा के अन्तर्गत गहन पारिस्थितिकी की संकल्पना इस दिशा में विचार करती है कि मनुष्य समस्त पर्यावरण का एक अंग है और अपने विकास के साथ–साथ वह समस्त पर्यावरण को भी विकसित करे। इसके लिए उसे अपने अहं का विलयन करना होगा, स्वयं को सर्वोच्च समझने की भावना का त्याग करके स्वयं को इस विराट पर्यावरण का एक तुच्छ अंग मानना होगा। यह आत्मशोध और उसके पश्चात् आत्मबोध से ही संभव है। इसके पक्ष में भारत में अनेक महान् विचारकों (गाँधी, टैगोर, कबीर) ने अपना समर्थन प्रस्तुत किया, तो विदेशों में अर्ने नैश जैसे विश्व–प्रसिद्ध पर्यावरणविद् ने आवाज उठायी। पर्यावरण नैतिकता की अवधारणा में सबसे महत्वपूर्ण बात है अहं का विलयन। जब व्यक्ति का अहं, उसकी 'मैं' की भावना का विसर्जन हो जाता है तो वह व्यष्टि से समष्टि में परिवर्तित होने लगता है। उसका 'स्व' 'सर्व' में समाहित हो जाता है। यहीं पर्यावरण के साथ उसका पूर्ण तादात्म्य स्थापित होता है और वह एकाकी इकाई न रहकर एक पूर्ण व्यवस्था का सार्थक अंग बन जाता है।

सूरदास द्वारा चित्रित ब्रज संस्कृति में पर्यावरण से जुड़ाव इस दार्शनिक स्तर पर भी खरा उतरता है। गोवर्धन–पूजन के पश्चात् इंद्र के गर्व के दमन के साथ कृष्ण के माध्यम से इंद्र के अहं पर चोट करते हुए सूरदास ने यह निश्चित संकेत दिया है कि जीवन में ऊँचा उठने के लिए सबको साथ लेकर चलना जरूरी है और अपने परिवेश व पर्यावरण की लय में अपनी लय का सन्निवेश करना भी आवश्यक है। तभी आत्मबोध संभव होगा और तभी आत्मा–परमात्मा का सम्मिलन भी संभव होगा। यही सम्मिलन प्रतीक रूप में ब्रजमण्डल में प्रसिद्ध **रासलीला** द्वारा भी इंगित है। यह रास मूलतः जीव और ब्रह्म के मिलन की प्रसन्नता व्यक्त करता है, जहाँ जीव रूपी गोपियाँ ब्रह्म स्वरूप हैं– ''भागवतशास्त्र के अनुसार शुद्ध जीव का ब्रह्म के साथ विलास ही 'रास' है। रासलीला में कृष्ण ने (शिव की तरह) काम के गर्व का मर्दन कर दिया। रासलीला देहभान भूली हुई, देहाभास से मुक्त नारी की कथा है जहाँ वह 'चिन्मयी लीला' में प्रवेश पा जाती है– रिश्ते, नाते, लज्जा, मर्यादा, वस्त्र (पाँच) को छोड़कर।'' (मेघ, 1996, पृ0 135)। ब्रज संस्कृति इस रास के माध्यम से परोक्ष रूप से अपने पर्यावरण के प्रति पूर्ण समर्पण और आस्था अभिव्यक्त करती है। कदाचित् ब्रजमण्डल में रची–बसी यही पर्यावरण नैतिकता वहाँ के लोगों की रागात्मकता, प्रेममय आचरण, सहानुभूतिमय व्यवहार और वाणी की मिठास का मूल कारण है। वास्तव में विश्व भर में पर्यावरण पर हो रही चिन्ताओं के निदान को खोजने के लिए हमें अपने ही भीतर झाँकना होगा, अपने आसपास टटोलना होगा, अपने परिवेश को परखना होगा– उत्तर स्वयमेव सामने आ जाएगा।

सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण

ब्रज संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण में सूरदास द्वारा वर्णित इन विविध प्रसंगों के अतिरिक्त वहाँ का सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण भी बहुत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण का समाज से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। यदि पर्यावरण को मात्र प्रकृति तक सीमित रखा जाए, तो वह एकांगी दृष्टिकोण

होगा। मानव सामाजिक प्राणी है इसलिए मानवीय सामाजिक पर्यावरण पर ध्यान देना भी जरूरी है। समाज की व्यवस्था, उसकी कार्य प्रणाली में मानव के शाश्वत मूल्यों का समावेश होना चाहिए। एक ओर सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत परिवार, संगठन, समुदाय, जीवन मूल्य, सम्प्रदाय, आधुनिकता आदि बिन्दुओं का सम्मिलन किया जाता है तो साथ ही सांस्कृतिक पर्यावरण में धर्म, जाति, सामाजिक संरचना, परम्परा, रीति–रिवाज, संस्कारों आदि पर विचार किया जाता है।

पीताम्बर व मोर–मुकुट (वेशभूषा)

गोप–गोपियों और स्वयं कृष्ण की पूरी वेशभूषा, रहन–सहन, आचार–विचार पर यदि ध्यान दिया जाए, तो वह अपने परिवेश से लगभग एकीकृत से होते दिखाई देते हैं। गोप–ग्वालों–गोपियों के वस्त्रों की रंगमयता और उसमें खिलता कृष्ण का पीताम्बर मानो विविधमयी रंगीन प्रकृति के बीच शुभत्व और स्वस्ति का संकेत करता है। साथ ही कृष्ण के मुकुट पर विराजता मोर पंख निश्चित तौर पर पर्यावरण के महत्व को रेखांकित करता है। मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है और भारतीय संस्कृति की अपूर्व पहचान है। उसी मयूर का संकेत–उसका मोरपंख–जब कृष्ण अपने शीश पर धारण करते हैं तो निस्संदेह वे पूरी समष्टि के समक्ष पर्यावरण–संरक्षण के अनूठे आदर्श को प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति और पर्यावरण को अपने व्यक्तित्व में इतना समंजित हो जाने दो कि दोनों एकमेक होकर एक ध्वनि में गुंजित हों। साथ ही शायद यह भाव भी उभर आए कि पर्यावरण संरक्षण की भावना को हमें शिरोधार्य करना चाहिए, जैसा कृष्ण ने किया, जैसा आज तक ब्रजमण्डल में हो रहा है।

मुरली

कृष्ण के अनूठे व्यक्तित्व के सृजन में सूरदास ने बाँस की मुरली की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई है। यह मुरली ही कृष्ण के सम्मोहन और वशीकरण का अस्त्र है। ध्यान देने की बात यह है कि यह मुरली उसी ब्रजमण्डल में उगने वाले बाँस के अनेकानेक वृक्षों से बनी है, कहीं बाहर से नहीं आयी है। इसीलिए इस मुरली में ब्रज की आत्मा गूँजती है। वे सभी स्वर इस बाँसुरी में जीवन्त हो उठते हैं, जो ब्रज की धरती में रचे–बसे हैं, जो उन बाँस के झुरमुटों में छिपे हैं, जो पक्षियों के कलरव में हैं, जो गायों के रंभाने में हैं और जो गोप–गोपियों के मान–मनुहार में हैं। वह पूरी सांस्कृतिक–सामाजिक समष्टि उस मुरली की स्वर–सृष्टि में उतर आती है।

संगीत का महत्व

मुरली के इस मनमोहक स्वर–संसार को रचने की पृष्ठभूमि में सूरदास ने अप्रत्यक्ष रूप से जीवन में संगीत और रागात्मकता के महत्व को उकेरा है। हमारे पूरे जीवन में लय व्याप्त है, जो कि पूरी प्रकृति में भी छायी है। एक निश्चित गति से धरती घूम रही है, रात्रि–दिवस के समय निश्चित हैं और हमारी श्वासों में भी एक निश्चित लय है, गति है, यति है। हमारे पूरे पर्यावरण में एक अदृश्य लय है, एक अनसुना संगीत है, जिसे सुनाने की चेष्टा सूरदास ने कृष्ण की बांसुरी के माध्यम से की है। संगीत में वह शक्ति है जो जीवन को बाँधती है, उसे शान्त करती है, उसे जीवन्त करती है। उस शक्ति का उचित उपयोग पर्यावरण संरक्षण में मुरली की धुन से होता दिखाई देता है, जब पूरी संसृष्टि ही उस बंसी–स्वर को सुन ठिठक कर मंत्रमुग्ध होकर रह जाती है। अपने पर्यावरण संरक्षण हेतु आज हमें उसी संगीत को अपने भीतर से उत्पन्न करना होगा, उस वशीकरण मंत्र को अपनी आत्मा की गहराइयों से जागृत करना होगा। इसके लिए आवश्यक है आत्मबोध, आत्मशोधन और अपने पर्यावरण से पूर्ण तादात्म्य।

होली का त्यौहार

ब्रजमण्डल में मनाए जाने वाली तीज–त्यौहारों में होली के त्यौहार की बहुत धूम रहती है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि होली मुख्यतः प्रेम, रस और सौहार्द का त्यौहार है। इसके रंगों की छटा में प्रकृति का भी योगदान रहता है। गुलाब की पंखुड़ियों का गुलाबीपन और टेसू की नारंगी छटा इस त्यौहार में सुन्दरता और प्रेम के रस भर देती है। पुनः इस त्यौहार द्वारा ब्रजमण्डल पूरे विश्व को प्रेम और सद्भावना का संदेश देता है, जब वह अपने पर्यावरण से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर अपनी रंगभरी दुनिया में पूरी मस्ती और पूरी रागात्मकता से सराबोर रहता है।

निष्कर्ष

अंततः ब्रज संस्कृति द्वारा ब्रज के **पर्यावरण संरक्षण** के नितान्त सहज, स्वाभाविक और सरल उपाय आज के समाज के दुरुह विचारों को पूरी तरह ध्वस्त करने की शक्ति रखते हैं। कृष्ण की लीलाओं और व्यक्तित्व के माध्यम से सूरदास ने जिस पूर्णावतार की कल्पना की है वह वास्तव में अपने पर्यावरण से जुड़ाव के कारण ही पूर्णता प्राप्त करता है। आज विश्व भर में पर्यावरण को लेकर वैचारिक मंथन हो रहे हैं किन्तु कमी है आत्मिक मंथन की। जब हम अपनी आत्मा का तादात्म्य अपने आसपास के परिवेश से कर लेंगे, जब उसके सुख में सुख और दुख में दुख का अनुभव करना

सीख जायेंगे तो स्वतः ही उस पर्यावरण को संरक्षित और पोषित करने का भाव हमारे भीतर उत्पन्न होगा। आज के संत्रस्त समाज के सम्मुख कदाचित् ब्रज संस्कृति *''पर्यावरण संरक्षण''* का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत कर अनुकरण का सार्थक संदेश देने में सक्षम है।

सुजाता चतुर्वेदी, पी–एच0डी0, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर, (उ0 प्र0), भारत

संदर्भ सूची

प्रसाद, सुखदेव (1998). *पर्यावरण संरक्षण।* इलाहाबाद– साहित्य भंडार।

मेघ, रमेश कुंतल (1996). *मनखंजन किनके।* नई दिल्ली– वाणी प्रकाशन।

शुक्ल, कमलनयन (1998). *पर्यावरण की वैदिक अवधारणा।* बीकानेर– वाग्देवी प्रकाशन।

सूरदास (संवत् 2005 विक्रम). *सूरसागर (प्रथम खण्ड)।* (सं0– नंद दुलारे बाजपेयी). काशी– नागरी प्रचारिणी सभा।

सर्वे भवन्तु सुखिनः (वृहदारण्यक उपनिषद– 1/4/14)

[1]सूरदास ने ब्रज में बसे सौंदर्य के हर कोण को उभारते हुए बताया है कि कृष्ण, उनके मित्र, वहाँ बसे सभी लोग सुंदरता के मानक पर खरे उतरते हैं। उनका सौंदर्य मात्र शारीरिक ही नहीं, बल्कि वचन, गुण आदि से आंतरिक सुंदरता भी झलकती है। सूरदास के अनुसार श्रीकृष्ण का सान्निध्य पाकर समस्त जीवन सुन्दर सुख से भरपूर हो उठता है और इन्हीं सरल भक्तों के लिए भगवान ने ब्रज में सुंदर अवतार लिया है।

[2]यमुना किनारे वृक्षों की शीतल छाया तले कृष्ण सहित सभी गोप कलेवा करते हैं और यमुना के मीठे जल को पीते ('पीजै') हैं तथा गौएँ हरी घास चरती हैं।

[3]बालकृष्ण के लिए ये वन ही जीवन का आधार हैं, उनके खेल–कूद के भी साधन हैं। तभी वे कहते हैं कि आज वे वन में गाय चराने जाएँगे और वहाँ के विविध प्रकार के फलों को अपने हाथ से तोड़कर खाएँगे ('खेहौं')।

[4]युवा कृष्ण के अद्भुत मुरली–वादन के स्वरों से सभी गोपियाँ तो सम्मोहित हो ही जाती हैं, साथ ही सम्पूर्ण ब्रज–गाँव भी उस अलौकिक स्वर–लहरी में डूब जाता है।

[5]कालिया नाग के विशालकाय फन पर नंद के 'नंदन' या पुत्र कृष्ण ने नृत्य करते हुए उस भीषण विषमय कुटिल नाग को अत्यन्त सहजता से 'नाथ' (वश में कर) लिया। इतने दुष्कर कार्य को श्रीकृष्ण ने जिस सरलता से किया, वह 'निरतत' शब्द (नृत्य करना) से स्पष्ट है क्योंकि नृत्य प्रसन्न व मग्न मुद्रा अधिकांशतः दर्शाता है।

[6]ब्रजवासियों के अभी तक इष्टदेव इंद्रदेव थे और अब उनका स्थान गोवर्धन ने ले लिया। इससे रुष्ट होकर इंद्र ने अपना क्रोध भयंकर आँधी–तूफान–वर्षा के रूप में प्रकट किया। सभी ग्वालों–गोपालों को भयभीत करने वाली काली भयानक घटा और घनघोर तूफान से इन्द्र अपना कोप (क्रोध) प्रकट कर रहे थे।

[7]इतनी विकट तूफानमय परिस्थिति में पुनः ब्रजलोक के संरक्षण के लिए श्रीकृष्ण आगे आए। गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसके आश्रय में ब्रजमंडल को सुरक्षित कर लिया। साथ ही श्रीकृष्ण ने सबको धैर्य बंधाते हुए गोवर्धन 'गिरि' (पर्वत) की महत्ता से अवगत कराया।